गांधी और समाजवादी: संबंध की सच्चाई

प्रेम सिंह

(*यह लेख 18-20 मार्च 2010 को साहित्य अकादमी द्वारा आयोजित 'साहित्योत्सव' (वार्षिक राष्ट्रीय संगोष्ठी) में पढ़ा गया था। डॉ राममनोहर लोहिया जन्मशतवार्षिकी के अवसर पर साहित्य अकादमी ने वह संगोष्ठी आयोजित की थी। संगोष्ठी का उद्घाटन यूआर अनंतमूर्ति ने और बीज-भाषण सच्चिदानंद सिन्हा ने दिया था। संगोष्ठी में पढ़े जाने के बाद लेख 'सामयिक वार्ता' में प्रकाशित भी हुआ था। लेख पर कोई चर्चा नहीं हुई। डॉ वीरभारत तलवार ने जरूर व्यक्तिगत रूप से इस 'गंभीर' लेख की प्रशंसा की थी। कुछ महीने पहले डॉ आकाशदीप ने इसे टाइप करके मुझे भेजा। नए पाठकों के लिए लेख को फिर से जारी किया गया है।*)

आजादी के साथ विभाजन की घड़ी में जब ज्यादातर बड़े कांग्रेसी नेताओं ने गांधी को अकेला छोड़ दिया था, तब नए समाजवादी नेताओं ने उनका साथ दिया। उस दौर का इतिहास लिखने वाले विद्वान गांधी और समाजवादियों के उस संबंध का उल्लेख नहीं करते। किसी विद्वान ने अभी तक उसका अर्थ भी नहीं निकाला है। न तात्कालिक, न दूरगामी। लोहिया ने अपने सहित समाजवादियों और गांधी के संबंध के बारे में 'भारत विभाजन के गुनाहगार' तथा 'मार्क्स गांधी एंड सोशलिज्म' पुस्तकों समेत कई जगह लिखा है। उस लेखन में कई जानकारियां, तथ्य और व्याख्याएं विद्वानों, विशेषकर आधुनिक भारत के इतिहासकारों के काम की हो सकती हैं। इतिहास-लेखन की कतिपय नवीन दृष्टियों और पद्धतियों के उपयोग में आने के बावजूद किसी इतिहासकार ने उस पर ध्यान नहीं दिया है।

गांधी की तरफ से वह अकेले पड़ जाने की स्थिति में अपनाया गया संबल नहीं था। न समाजवादी पूजा अथवा दया भाव के चलते गांधी के करीबी बने थे। लोहिया के यह कहने के बावजूद कि "गांधी ने विभाजन के मसले पर ब्रिटिश हुकूमत और कांग्रेस कमेटी से जूझने के लिए समाजवादियों की ताकत का जायजा लेने की कोशिश की थी लेकिन हम समाजवादी उनकी अपेक्षा पर खरे नहीं उतरे", यह नहीं कहा जा सकता है कि वह साथ, दोनों तरफ से, राजनैतिक व्यावहारिकता के दबाव का नतीजा था। भारतीय राजनीतिक पट पर गांधी और समाजवादियों का साथ ऐसे समय में सच्चाई की आभा से दीप्त एक क्षण है, जब स्वतंत्रता संघर्ष के मूल्यों और मनुष्यता की ज्योति एकबारगी बुझ गई थी। गांधी की हत्या के बाद जवाहरलाल नेहरू ने जब कहा कि 'रोशनी बुझ गई है', वे या अन्य नेता व विद्वान देख नहीं पाए कि उस रोशनी की लौ युवतर समाजवादी नेताओं में चली आई है।

मार्क्सवाद की पाठशाला में समाजवाद का पाठ पढ़ने वाले जयप्रकाश नारायण, आचार्य नरेंद्रदेव और राममनोहर लोहिया गांधी के साथ बने संबंध के बाद काफी बदल गए। गांधी में भी बदलाव आया। परिपक्वावस्था में गांधी ने अंबेडकर के बाद समाजवादियों के साथ संबंध में ही अपने को बदला। गांधी में आने वाले बदलाव पर हम यहां चर्चा नहीं कर रहे हैं। हम संक्षेप में यह देखने की कोशिश कर रहे हैं कि गांधी नामक रोशनी की जो लौ समाजवादियों, जो विशेषकर लोहिया में चली आई, वह उनके चिंतन और राजनैतिक कर्म में दीप्त हुई।

गांधी और आजादी के संघर्ष की उन समस्त धाराओं को, जो गांधी के पहले और समानांतर चलीं, आत्मसात किए बगैर आधुनिक भारतीय सभ्यता और राजनीति का स्वरूप व रास्ता तय नहीं किया जा सकता, यह सच्चाई समाजवादियों ने अंधकार की उस घड़ी में पहचानी। आत्मसातीकरण की प्रक्रिया में, विशेषकर लोहिया भूगोल और इतिहास के एक-एक कोने तक गए। 'धरतीमाता भारत माता' के साथ लोहिया जैसा तादातम्य किसी का नहीं हुआ। उन्होंने भारत और एशिया की मिथक रचनाओं, दार्शनिक परंपराओं, महाकाव्यों और इतिहास का अध्ययन कर उनमें समता और स्वतंत्रता की अंतर्वस्तु का संधान किया है। 'हिंद स्वराज' में गांधी ने एक जवाब में कहा है, "राष्ट्र बनने के लिए आत्मसात करने की क्षमता पैदा करना जरूरी है।" कहना न होगा कि विश्व बनने की भी वही कसौटी है।

मैंने कुछ साल पहले हमने गांधी और लोहिया के संबंध पर एक लेख लिखा था। (देखें, बिंदु पुरी, संपा., 'गांधी एंड लोहिया: एन इंटीमेट एंड फ्रूटफुल रिलेशनशिप', *महात्मा गांधी एंड हिज कटेंपरेरीज*, इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ एडवांस्ड स्टडी, शिमला, 2001; हिंदी अनुवाद, 'गांधी और लोहिया आत्मीय और फलप्रद संबंध का किस्सा', **सामयिक वार्ता**, मार्च 2003) उस समय हमें लगा था कि समाजवादी नेताओं में गांधी नेहरू-पटेल की पीढ़ी के बाद के नेतृत्व की संभावना देख रहे थे। गांधी की वह इच्छा फलीभूत नहीं हुई। हालांकि, 1967 और 1977 में कांग्रेसी सत्ता की चट्टान को तोड़ने में ये नेता सफल हुए; उनके उद्यम से पहली घटना से भारतीय लोकतंत्र को गति मिली और दूसरी से लोकतंत्र की रक्षा के साथ तानाशाही से मुक्ति।

लेकिन वह उपलब्धि ज्यादा महत्वपूर्ण नहीं है। वास्तविक महत्व की बात है कि वे राजनीति में सम्यक दार्शनिक दृष्टि से परिचालित रहे, जिसमें सिद्धांत, कार्यक्रम/नीति और प्रतिरोध की कार्य-प्रणाली में अन्योन्याश्रित संबंध होता है; सम्यक दार्शनिक दृष्टि अर्जित की जाती है, अतीत या वर्तमान से, देश या विदेश से सीधे उठाई नहीं जा सकती; राजनीति और उसे करने वालों की भूमिका सत्ता की दावेदारी से बड़ी होती है।

राजनीति का यह विवेक और आदर्श आधुनिक दुनिया में सबसे ज्यादा गांधी ने सामने रखा था। राजनीति अगर आधुनिक जीवन के केंद्र में है तो उसे नैतिक और मानवीय भित्ती पर कायम रखने का कोई विकल्प नहीं हो सकता। वह अच्छाई को हासिल करने का माध्यम नहीं, अच्छाई की प्रेरणा का स्रोत बनी रहनी चाहिए। जीवन की केंद्रीय परिचालक शक्ति हिंसा, झूठ, षड्यंत्र, युद्ध का आसरा नहीं ले सकती। तात्कालिक रूप में भी नहीं। हर उठाया जाने वाले कदम और उपयोग में लाये जाने वाले साधन का औचित्य उसी में निहित होना चाहिए, किसी दूरगामी लक्ष्य में नहीं। इसीलिए उन्होंने राजनीति में अहिंसा, सत्य, पारदर्शिता, सिविल नाफरमानी को राजनीति की धुरी बनाया। गांधी ने यह किया, लिहाजा, वे आधुनिक युग के आधुनिकतम व्यक्ति थे। भले ही वह यूरोपीय-अमेरिकी ढंग की प्रचलित एवं प्रभुत्वशाली आधुनिकता न हो।

'हिंद स्वराज' में गांधी जब कहते हैं, "मेरा मानना है कि यदि भारत आधुनिक सभ्यता को नकार दे तो इससे उसका भला ही होगा।", वे पूंजीवादी-साम्राज्यवादी आधुनिकता को नकारते हैं। 'हिंद स्वराज' के अंत में कुछ संदर्भ पुस्तकों की सूची दी गई है। उनमें में दो पुस्तकों - दादा भाई नौरोजी की 'पॉवर्टी एंड अनब्रिटिश रूल इन इंडिया' और आरसी दत्त की 'इकॉनॉमिक हिस्ट्री ऑफ इंडिया' को छोड़ कर सभी यूरोप और अमेरिकी विचारकों की हैं। उनमें कुछ विचारक ऐसे हैं जिन्होंने प्रचलित आधुनिकता के बरक्स आधुनिकता का प्रस्तावन किया था। हालांकि, प्रचलित आधुनिकता को वे बदलने में कामयाब नहीं हो पाए। यूरोप और अमेरिका से दुत्कारी गई वह "आधुनिकता" 'हिंद स्वराज' में पनाह पाती है।

अगर समाजवादी गांधी से नहीं जुड़ते तो 'हिंद स्वराज' में गढ़ा जाने वाला आधुनिक सभ्यता का वह वैकल्पिक खाका, जिसमें आजादी के बाद रंग भरे जाने थे, उसी तरह निरर्थक हो सकता था जैसे नेहरू को लिखी गांधी की चिट्ठी। लोहिया ने स्वीकार किया है कि उन्होंने समाजवाद की दार्शनिक संघटना अथवा विचार-प्रणाली में गांधी के विचारों और कामों का सारतत्व ग्रहण किया है।

गांधी से उन्मेषित समाजवादियों के चिंतन और राजनैतिक कर्म की सार्थकता आलोचना, मतभेद या विरोध का विषय हो सकती है। बल्कि सत्ता-प्रतिष्ठान की तरफ से उसका लगातार विरोध हुआ। लोहिया ने समाजवाद की विचारधारा में गांधी का 'फिल्टर' लगा दिया था, इसलिए राजनैतिक जमातें भी विरोध बनाए रहीं। बुद्धिजीवियों का विरोध और बहिष्कार तो जग-जाहिर है ही। सार्थकता और सफलता का सवाल अलग है। ज्यादा महत्वपूर्ण यह है कि समाजवादियों ने पूंजीवाद और साम्यवाद के बरक्स समाजवादी सभ्यता निर्मित करने के प्रयास कर स्वतंत्र पहल की स्वतंत्रता बनाए रखी। हालांकि, कुछ न कुछ सार्थकता और सफलता भी उसकी रही।

समाजवादियों के चिंतन और राजनीतिक कर्म के परिणामस्वरूप देश में आत्मविश्वास का माहौल बना और एक आशा जगी रही। उस माहौल में शूद्र और दलित राजनीति की संभावनाएं बनीं। क्षेत्रीय पार्टियों का उभार हुआ। कम्युनिस्ट राजनीति के सैद्धांतिक फेर-बदल और प्रगतिशील आंदोलन के फैलाव में समाजवादियों द्वारा बनाया गया माहौल महत्वपूर्ण कारक था। जनसंघ-भाजपा की राजनीति पर भी उसका प्रभाव पड़ा है। यहां तक कि सत्तासीन कांग्रेस भी समाजवादियों के प्रभाव से अछूती नहीं रही। प्रभाव की शक्ति की बात उतना नहीं, प्रभाव पड़ने की बात ज्यादा महत्वपूर्ण है। जब तक एक-दूसरे पर प्रभाव-स्वरूप भारतीय राजनीतिक समूहों में आपसी अनुक्रिया होती रही, उसमें परिवर्तन का लक्ष्य स्वीकृत बना रहा। लिहाजा, भारत की राजनीति में नवउदारवाद का शिकार होने से बचने की ताकत भी कुछ न कुछ बनी रही। गांधी का आखिरी आदमी राजनीति से बेदखल नहीं किया जा सका।

गांधी के बाद आखिरी आदमी से अपने को सबसे ज्यादा लोहिया ने जोड़ा। उन्हें अपने राजनीतिक संघर्ष में इतने भर से खुशी मिल जाती थी कि देश के गरीब लोग उन्हें अपना आदमी मानते हैं। लोहिया कहते हैं, "गांधी जी ने अपने जीवन में छह महीने या एक साल विदेशी या देशी शासकों का हृदय बदलने में लगाया था और पूरे छप्पन साल देश की जनता के दिलों की कायरता को वीरता में बदलने में व्यतीत किए। संपन्न लोगों, शोषकों और उत्पीड़िकों का हृदय बदलने की इच्छा करना हमेशा अच्छा

होता है लेकिन दुर्बल और पीड़ित, शोषित और दलित लोगों का हृदय परिवर्तित करना उससे कहीं अधिक आवश्यक है।" ('समाजवादी आदोलन: नया अध्याय')

देश की जनता के दिलों में साहस भरने के उद्यम को लोहिया ने आजाद भारत में आगे बढ़ाया। सत्याग्रह और सिविल नाफरमानी के साथ उन्होंने जेल जाने को राजनैतिक कार्यकर्ताओं का अनिवार्य कर्तव्य बना दिया था। लोहिया खुद आजाद भारत में गुलाम भारत की अपेक्षा ज्यादा बार जेल गए।

लोहिया ने गांधी के आखिरी आदमी को आजाद भारत की राजनीति के केंद्र में लाने के लिए राजनैतिक समाजशास्व (पॉलिटिकल सोशियोलॉजी) की अनोखी रचना की। लोकतांत्रिक राजनीति में यह उनका गांधी से आगे का काम था। लोहिया ने विचार दिया कि समाज के दबे-कुचले और उपेक्षित समूहों - दलित, आदिवासी, पिछड़े, स्त्रियां और गरीब अल्पसंख्यक - को राजनीति समेत जीवन के हर क्षेत्र में आगे लाकर ब्राह्मणवादी-पूंजीवादी गठजोड़ को तोड़ा जा सकता है। अभी तक लोहिया की इस महत्वपूर्ण रचना का कुछ पिछड़े और दलित नेताओं ने चुनावी लाभ ही उठाया है।

लोहिया ने गांधीवाद का सारतत्व लेने की बात की है। लेकिन प्रतिरोध की अहिंसक कार्य-प्रणाली को उन्होंने पूरी तरह स्वीकार किया है: "अतः हमारे युग की सबसे बड़ी क्रांति कार्य-प्रणाली की क्रांति है, एक ऐसी कार्य-पद्धति के द्वारा अन्याय का विरोध जिसका चरित्र न्याय के अनुरूप है। यहां सवाल न्याय के स्वरूप का उतना नहीं है जितना उसे प्राप्त करने के उपाय का। वैधानिक और व्यवस्थित प्रक्रियाएं अक्सर काफी नहीं होती। तब हथियारों का इस्तेमाल उनका अतिक्रमण करता है। ऐसा न हो, और मनुष्य हमेशा वोट और गोली के बीच ही भटकता न रहे, इसलिए सिविल नाफरमानी की कार्य-प्रणाली संबंधी क्राति सामने आई है। हमारे युग की क्रांतियों में सर्वप्रमुख है हथियारों के विरुद्ध सिविल नाफरमानी की क्रांति, यद्यपि वास्तविक रूप में यह क्रांति अभी तक कमजोर ही रही है।" ('मार्क्स गांधी एंड सोशलिज्म') प्रतिरोध की अहिंसक कार्य- प्रणाली के असंदिग्ध और पूर्ण स्वीकार के कई आयाम बनते हैं। उनमें एक महत्वपूर्ण आयाम आखिरी आदमी की प्रतिष्ठा और मजबूती का है।

जनसामान्य की भाषाओं को राज-काज की भाषा बनाने का उनका आग्रह, छोटी मशीन और चौखंबा राज की अवधारणाओं समेत उनका अर्थ-दर्शन, इतिहास-दर्शन, समाज-दर्शन, धर्म-दर्शन, संस्कृति-दर्शन समता और स्वतंत्रता के साथ आखिरी आदमी के लिए है। ऐसा सुनने को मिलता है कि गांधी की भूमिका खत्म हो गई थी। लिहाजा, उनकी हत्या से कोई नुकसान नहीं हुआ। लोहिया ने लिखा है कि गांधी के मरने पर दुनिया में जगह-जगह साधारण लोग शोकाकुल हुए थे। भारत में बड़े लोगों को जो हैसियत मिली थी, उसमें गांधी का बड़ा योगदान था। लेकिन उनमें से कोई नहीं रोया।

उन्होंने नेहरू के आभा-मंडल में अपनी हैसियत सुरक्षित कर ली थी। यह अकारण नहीं है कि लोहिया में चली आई रोशनी की लौ सबसे ज्यादा नेहरू के आभा-मंडल को भेदती है। गांधी की हत्या के पीछे की कट्टरतावादी ताकतों को उनके किन कामों से गुस्सा आया था, इसकी चर्चा लोहिया ने अपने मशहूर निबंध 'हिंदू बनाम हिंदू' में की है। लेकिन गांधी के प्रति गुस्सा कट्टरतावादी ताकतों को ही नहीं था। रोशन खयाल जमातों को भी उन पर उतना ही गुस्सा था। लोहिया के प्रति दोनों का गुस्सा सम्मिलित

हो जाता है। क्योंकि गांधी नाम की रोशनी की लौ से सबसे ज्यादा लोहिया का चिंतन और राजनीतिक कर्म दीप्त है।

(समाजवादी आंदोलन से जुड़े *लेखक दिल्ली विश्वविद्यालय के पूर्व शिक्षक और भारतीय अध्ययन संस्थान के पूर्व फ़ेलो हैं*)